रामधारी सिंह दिनकर

जन्म	:	23 सितंबर 1908 ।
निधन	:	24 अप्रैल 1974 ।
जन्म-स्थान	:	सिमरिया, बेगूसराय, बिहार ।
माता-पिता	:	मनरूप देवी एवं रवि सिंह ।
पत्नी	:	श्यामवती देवी ।
शिक्षा	:	प्रारंभिक शिक्षा गाँव और उसके आसपास । 1928 में मोकामा घाट रेलवे हाई स्कूल से मैट्रिक, 1932 में पटना कॉलेज से बी० ए० ऑनर्स (इतिहास) ।
वृत्ति	:	प्रधानाध्यापक, एच० ई० स्कूल, बरबीघा ; सब-रजिस्ट्रार ; सब-डायरेक्टर, जनसंपर्क विभाग एवं बिहार विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर । भागलपुर विश्वविद्यालय में उपकुलपति । हिंदी सलाहकार के रूप में भी कार्य ।
साहित्यिक अभिरुचि	:	1925 में 'छात्र सहोदर' में पहली कविता प्रकाशित । देश (पटना), प्रकाश (बेगुसराय), प्रतिमा (कन्नौज) में छात्र जीवन में अनेक रचनाएँ प्रकाशित । 21 वर्ष की अवस्था में पहली कविता पुस्तक 'प्रणभंग' प्रकाशित ।
कृतियाँ	:	प्रमुख काव्य कृतियाँ : प्रणभंग (1929), रेणुका (1935), हुंकार (1938), रसवंती (1940), कुरुक्षेत्र (1946), रश्मिरथी (1952), नीलकुसुम (1954), उर्वशी (1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), कोमलता और कवित्व (1964), हारे को हरिनाम (1970) आदि । प्रमुख गद्य कृतियाँ : मिट्टी की ओर (1946), अर्धनारीश्वर (1952), संस्कृति के चार अध्याय (1956), काव्य की भूमिका (1958), वट पीपल (1961), शुद्ध कविता की खोज (1966), दिनकर की डायरी (1973) आदि ।
पुरस्कार एवं सम्मान	:	'संस्कृति के चार अध्याय' पर साहित्य अकादमी एवं 'उर्वशी' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार । राज्यसभा के सांसद । पद्मभूषण एवं कई अलंकरणों से सम्मानित । राष्ट्रकवि के रूप में समादृत ।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जितने बड़े कवि थे उतने ही समर्थ गद्यकार भी । उनके गद्य में भी उनकी कविता के गुण–ओज, पौरुष, प्रभावपूर्ण वाग्मिता और रूपकधर्मिता आदि उसी सहजता और प्रवाह के साथ मुखरित होते हैं । उनकी कविता और गद्य दोनों में उनके व्यक्तित्व की एक जैसी गहरी छाप है । उनकी भाषा कुछ भी छिपाती नहीं, सबकुछ उजागर कर देती है । अब यह पाठकों-श्रोताओं की ग्रहणशीलता पर निर्भर है कि वह कितनी जागरूक और चौकन्ना है । उनकी पराक्रमी वाणी में सन्नाटे और मौन के सक्रिय निषेध का बल भी है; गोया वह उठ खड़ी हुई वाणी हो ।

दिनकर छायावादोत्तर युग के प्रमुख कवि हैं । वे भारतेंदु युग से प्रवहमान राष्ट्रीय भावधारा के एक महत्त्वपूर्ण

आधुनिक कवि हैं । कविता लिखने की शुरुआत उन्होंने तीस के दशक में ही कर दी थी किंतु अपनी संवदेना और भावबोध से वे चौथे दशक के प्रमुख कवि के रूप में ही पहचाने गए । उन्होंने प्रबंध, मुक्तक, गीत-प्रगीत काव्यनाटक इत्यादि अनेक काव्यशैलियों में सफलतापूर्वक उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । प्रबंधकाव्य के क्षेत्र में छायावाद के बाद के कवियों में उनकी उपलब्धियाँ सबसे अधिक और उत्कृष्ट हैं । भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का उनका अध्ययन-अनुशीलन विस्तृत एवं गंभीर है । उसकी छाप उनके काव्य और गद्य दोनों पर है, स्वभावत: गद्य पर अधिक स्पष्ट और मुखर । जातीय महाकाव्य महाभारत और व्यास की कवित्व-प्रतिभा का दिनकर पर वैभववर्धक प्रभाव है । दिनकर में इतिहास और सांस्कृतिक परंपरा की गहरी चेतना है और समाज, राजनीति, दर्शन का वैश्विक परिप्रेक्ष्य-बोध है जो उनके साहित्य में अनेक स्तरों पर व्यक्त होता है ।

गद्य के क्षेत्र में दिनकर ने अनेक उल्लेखनीय कृतियाँ दी हैं जो अनेक अर्थों में उनके युग की उपलब्धिभी मानी जा सकती है । काव्य चिंतन, संस्कृति चिंतन, भाषा चिंतन, समाज चिंतन आदि को लेकर उनके गद्य लेखन की अनेक कोटियाँ बनती हैं । उनके गद्य में विषयवस्तु, शैली, विधा और गद्यरूप की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है । सामान्यत: उनका साहित्य, विशेषकर गद्य साहित्य, संबोधित साहित्य है । लेखक जानता है कि वह किनके लिए लिख रहा है । उसकी रचनाएँ उस तक मनचाहे रूप में संप्रेषित हो जाती हैं । स्वभावत: दिनकर के साहित्य में एक प्रत्यक्षता और गरमाहट है ।

यहाँ उनका प्रसिद्ध निबंध 'अर्धनारीश्वर' प्रस्तुत है । अर्धनारीश्वर भारत का एक मिथकीय प्रतीक है जिसमें दिनकर अपना मनचीता आदर्श निरूपित होते देखते हैं । यह उनका प्रिय प्रतीक है जो प्राय: उनके काव्य और गद्य साहित्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपों में व्यक्त होता और काम करता दिखलाई पड़ता है । जीवनभर यह दिनकर का उपास्य आदर्श बना रहा । उनकी संवेदना, भावबोध और काव्य संस्कार पर इसका गहरा असर है । इस प्रतीक के सांस्कृतिक अभिप्राय क्या हैं ? क्या यह आज के सामान्य मनुष्य और सभ्यता के लिए भी कोई अर्थ और संदेश रखता है ? दिनकर इस परिप्रेक्ष्य में इस निबंध में विचार करते हैं । दिनकर के जन्मशताब्दी वर्ष में इस प्रिय प्रतीक पर उनके द्वारा फुर्सत से सोचते हुए लिखे गए इस निबंध द्वारा हम लेखक के मौलिक अखंड स्वरूप की एक झलक पा सकते हैं जो प्राय: ओट और धुँधलके में रहता आया है ।

◆ ◆ ◆

"जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है । यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया है । आधुनिक वह है, जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापता है । आधुनिक वह है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है ।"

– दिनकर

अर्धनारीश्वर

अर्धनारीश्वर शंकर और पार्वती का कल्पित रूप है, जिसका आधा अंग पुरुष का और आधा अंग नारी का होता है । एक ही मूर्ति की दो आँखें, एक रसमयी और दूसरी विकराल; एक ही मूर्ति की दो भुजाएँ, एक त्रिशूल उठाए और दूसरी की पहुँची पर चूड़ियाँ और उँगलियाँ अलक्तक से लाल; एवं एक ही मूर्ति के दो पाँव, एक जरीदार साड़ी से आवृत और दूसरा बाघंबर से ढँका हुआ ।

एक हाथ में डमरू, एक में वीणा परम उदार ।
एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार ।
जटाजूट में लहर पुण्य की, शीतलता-सुख-कारी ।
बालचंद्र दीपित त्रिपुंड पर, बलिहारी, बलिहारी ।

स्पष्ट ही, यह कल्पना शिव और शक्ति के बीच पूर्ण समन्वय दिखाने को निकाली गई होगी, किंतु इसकी सारी व्याप्तियाँ वहीं तक नहीं रुकतीं । अर्धनारीश्वर की कल्पना में कुछ इस बात का भी संकेत है कि नर-नारी पूर्ण रूप से समान हैं एवं उनमें से एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते । अर्थात नरों में नारियों के गुण आएँ तो इससे उनकी मर्यादा हीन नहीं होती, बल्कि, उनकी पूर्णता में वृद्धि होती ही होती है ।

किंतु पुरुष और स्त्री में अर्धनारीश्वर का यह रूप आज कहीं भी देखने में नहीं आता । संसार में सर्वत्र पुरुष पुरुष है और स्त्री स्त्री । नारी समझती है कि पुरुष के गुण सीखने से उसके नारीत्व में बट्टा लगेगा । इसी प्रकार पुरुष भी स्त्रियोचित गुणों को अपनाकर समाज में स्त्रैण कहलाने से घबराता है । स्त्री और पुरुष के गुणों के बीच एक प्रकार का विभाजन हो गया है तथा विभाजन की रेखा को लाँघने में नर और नारी, दोनों को भय लगता है ।

किंतु, ऐसा लगता है कि गुणों का बँटवारा करते समय पुरुष ने नारी से उसकी राय नहीं पूछी, अपने मन से उसने जहाँ चाहा, नारी को बिठा दिया । स्वयं तो वह वृक्ष बन बैठा और नारी को उसने लता बना दिया । स्वयं तो वह वृंत बन गया और नारी को उसने कली मान लिया । तब से धूप पुरुष और चाँदनी नारी रही है; ग्रीष्म नर और वर्षा मादा रही है; विचार पति और भावना पत्नी रही है । जहाँ भी कर्म का कोई क्षेत्र है, अधिकार की कोई भूमि है और सत्ता का कोई सीधा उत्स है, उस पर कब्जा नारी का नहीं, नर का माना जाता है । नर है विधाता का मुख्य तंतुवाय जो वस्त्र बुनकर तैयार करता है, नारी का काम

उस वस्त्र पर छींटे डालना है । नर है कुदाल चलानेवाला बलशाली किसान जो मिट्टी तोड़कर अन्न उपजाता है, नारी का काम दोनों को अछोरना-पछोरना है । नर है नदियों का वेगमय प्रवाह, नारी उसमें लहर बन कर उठती-गिरती रहती है । सिंहासन तो वस्तुतः राजा के लिए होता है; रानी उसके वामांग की शोभा मात्र है । सत्य है राजा की ग्रीवा और विशाल वक्षोदेश, रानी उन पर मंदार हार बनकर झूलने के लिए है । राजा काया और रानी छाया के प्रतीक हैं । सत्य का साकार रूप तो राजा ही होता है, रानी है कल्पना की रंगीन जाली और सपनों की मीठी मुस्कान जो जीवन में उतरी तो वाह-वाह और नहीं उतरी तो वाह-वाह । कहावत चल पड़ी है,

पुरुष ऐनेछे दिवसेर ज्वाला तप्त रौद्र दाह ।

कामिनी ऐनेछे यामिनी-शांति समीरण, वारिवाह ।

दिवस की ज्वाला और तप्त धूप, ये पुरुष की लाई हुई चीजें हैं । कामिनी तो अपने साथ यामिनी की शांति लाती है ।

किंतु कवि की यह कल्पना झूठी है । यदि आदि मानव और आदि मानवी आज मौजूद होते तो ऐसी कल्पना से सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें ही होता । और वे, कदाचित् कहते भी कि 'आपस में धूप और चाँदनी का बँटवारा हमने नहीं किया था । हम तो साथ-साथ जन्मे थे तथा धूप और चाँदनी में, वर्षा और आतप में साथ ही घूमते भी थे; बल्कि आहार-संचय को भी हम साथ ही निकलते थे और अगर कोई जानवर हम पर टूट पड़ता तो हम एक साथ उसका सामना भी करते थे ।' उन दिनों नर बलिष्ठ और नारी इतनी दुर्बल नहीं थी, न आहार के लिए ही एक को दूसरे पर अवलंबित रहना पड़ता था । नारी की पराधीनता तब आरंभ हुई जब मानव जाति ने कृषि का आविष्कार किया जिसके चलते नारी घर में और पुरुष बाहर रहने लगा । यहाँ से जिंदगी दो टुकड़ों में बँट गई । घर का जीवन सीमित और बाहर का जीवन निस्सीम होता गया एवं छोटी जिंदगी बड़ी जिंदगी के अधिकाधिक अधीन होती चली गई । नारी की पराधीनता का यह संक्षिप्त इतिहास है ।

नर और मादा पशुओं में भी थे और पक्षियों में भी । किंतु पशुओं और पक्षियों ने अपनी मादाओं पर आर्थिक परवशता नहीं लादी । लेकिन, मनुष्य की मादा पर यह पराधीनता आप से आप लद गई । और इस पराधीनता ने नर-नारी से वह सहज दृष्टि भी छीन ली जिससे नर पक्षी अपनी मादा को या मादा अपने नर को देखती है । कृषि का विकास सभ्यता का पहला सोपान था, किंतु इस पहली ही सीढ़ी पर सभ्यता ने मनुष्य से भारी कीमत वसूल कर ली । आज प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को फूलों सा आनंदमय भार समझता है और प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती होगी ।

इस पराधीनता के कारण नारी अपने अस्तित्व की अधिकारिणी नहीं रही । उसके सुख और दुख, प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा, यहाँ तक कि जीवन और मरण पुरुष की मर्जी पर टिकने लगे । उसका सारा मूल्य इस बात पर जा ठहरा कि पुरुषों को उसकी कोई आवश्यकता है या नहीं । इसी से नारी की पद-मर्यादा प्रवृत्तिमार्ग के प्रचार से उठती और निवृत्तिमार्ग के प्रचार से गिरती रही है । जो प्रवृत्तिमार्गी हुए, उन्होंने नारी को गले से लगाया, क्योंकि जीवन से वे आनंद चाहते थे और नारी आनंद की खान थी । किंतु जो

निवृत्तिमार्गी निकले उन्होंने जीवन के साथ नारी को भी अलग ढकेल दिया, क्योंकि नारी उनके किसी काम की चीज नहीं थी । प्राचीन विश्व में जब वैयक्तिक मुक्ति की खोज मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी साधना मानी जाने लगी, तब झुंड के झुंड विवाहित लोग संन्यास लेने लगे और उनकी अभागिनी पत्नियों के सिर पर जीवित वैधव्य का पहाड़ टूटने लगा । जरा उन आँसुओं की कल्पना कीजिए जो उन अभागिनियों की आँखों से बहते होंगे, जिनके पति परमार्थ लाभ के लिए उनका त्याग कर देते थे । जरा उस बेबसी को भी ध्यान में लाइए जो इस अनुभूति से उठती होगी कि आखिर जो संन्यास लेता है, वह निष्ठुर है, कायर और कठोर नहीं, बल्कि पुण्यात्मा, साहसी और शायद, सबसे बड़ा वीर है । और हाय री नारी ! जो इन परिस्थितियों से हार कर, स्वेच्छया, अपने आप को, सचमुच ही, पुण्य की बाधा और पाप की खान मानकर पछाड़ खाकर रह जाती थी ।

बुद्ध और महावीर ने कृपा करके नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया था, किंतु यह अधिकार भी नारी के हाथ सुरक्षित न रह सका । जैनों के बीच जब दिगंबर संप्रदाय निकला, तब धर्माचार्य नारियों की भिक्षुणी होनेवाली बात से घबरा उठे और धर्म-पुस्तक में उन्होंने एक नए नियम का विधान किया कि नारियों का भिक्षुणी होना व्यर्थ है, क्योंकि मोक्ष नारी जीवन में नहीं मिल सकता । नारियाँ घर में ही रहकर दान-पुण्य करें और उस दिन की प्रतीक्षा करें जब उनका जन्म पुरुष योनि में होगा । जब वे पुरुष होकर जनमेंगी, संन्यास वे तभी ले सकेंगी और तभी उन्हें मुक्ति भी मिलेगी । और बुद्ध ने भी एक दिन आयुष्मान आनंद से ईषत् पश्चाताप के साथ कहा कि "आनंद ! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच सहस्त्र वर्ष तक चलने वाला था, किंतु अब वह केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा, क्योंकि नारियों को मैंने भिक्षुणी होने का अधिकार दे दिया है ।"

धर्म साधक महात्मा और साधु नारियों से भय खाते थे । विचित्र बात तो यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने तो ब्याह भी किया और फिर नारियों की निंदा भी की । कबीर साहब का एक दोहा मिलता है–

नारी तो हम हूँ करी, तब ना किया विचार ।
जब जानी तब परिहरी, नारी महा विकार ।।

नारियों की यह अवहेलना हमारे अपने काल तक भी पहुँची है । बर्नार्ड शा ने नारी को अहेरिन और नर को अहेर माना है । तात्पर्य यह कि अहेर को अहेरिन के पास से बच कर चलना चाहिए । बहुत नीचे के स्तर पर कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया उन कवियों की भी है जो नारी को 'नागिन' या 'जादूगरनी' समझते हैं । लेकिन, ये सब झूठी बातें हैं, जिनकी ईजाद पुरुष इसलिए करता है कि उनसे उसे अपनी दुर्बलता अथवा कल्पित श्रेष्ठता के दुलराने में सहायता मिलती है । असल में, विकार नारी में भी है और नर में भी; तथा नाग और जादूगर के गुण भी नारी में कम, पुरुष में अधिक होते हैं एवं आखेट तो मुख्यत: पुरुष का ही स्वभाव है ।

इन सबसे भिन्न रवीन्द्रनाथ, प्रसाद और प्रेमचंद जैसे कवियों और रोमांटिक चिंतकों में नारी का जो रूप प्रकट हुआ, वह भी उसका अर्धनरेश्वरी रूप नहीं है । प्रेमचंद ने कहा है कि "पुरुष जब नारी के गुण लेता है तब वह देवता बन जाता है; किंतु नारी जब नर के गुण सीखती है तब वह राक्षसी हो जाती

है ।'' इसी प्रकार, प्रसाद जी की इड़ा के विषय में यदि यह कहा जाय कि इड़ा वह नारी है जिसने पुरुषों के गुण सीखे हैं तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि प्रसाद जी भी नारी को पुरुषों के क्षेत्र से अलग रखना चाहते थे । और रवींद्रनाथ का मत तो और भी स्पष्ट है । वे कहते हैं,

नारी यदि नारी हय
शुधू शुधू धरणीर शोभा, शुधू आली,
शुधू भालोवासा, शुधू सुमधुर छले,
शतरूप भंगिमाय पलके-पलके
फुटाय-जड़ाए बंके बेंधे हेंसे केंदे
सेवाये सोहागे छेपे चेपे थाके सदा
तबे तार सार्थक जनम । की होइवे
कर्म-कीर्ति, वीर्यबल, शिक्षा-दीक्षा तार ?

अर्थात नारी की सार्थकता उसकी भंगिमा के मोहक और आकर्षक होने में है, केवल पृथ्वी की शोभा, केवल आलोक, केवल प्रेम की प्रतिमा बनने में है । कर्मकीर्ति, वीर्यबल और शिक्षा-दीक्षा लेकर वह क्या करेगी ?

मेरा अनुमान है कि ऐसी प्रशस्तियों को ललनाएँ अभी भी बुरा नहीं मानतीं । सदियों की आदत और अभ्यास से उनका अंतर्मन भी यही कहता है कि नारी जीवन की सार्थकता पुरुष को रिझाकर रखने में है। यह सुनना उन्हें बहुत अच्छा लगता है कि नारी स्वप्न है, नारी सुगंध है, नारी पुरुष की बाँह पर झूलती हुई जूही की माला है, नारी नर के वक्षस्थल पर मंदार का हार है । किंतु यही वह पराग है जिसे अधिक से अधिक उड़ेल कर हम नवयुग के पुरुष नारियों के भीतर उठनेवाले स्वातंत्र्य के स्फुलिंगों को मंद रखना चाहते हैं ।

यतियों का अभिशप्त काल समाप्त हो गया । अब नारी विकारों की खान और पुरुषों की बाधा नहीं मानी जाती है । वह प्रेरणा का उद्‌गम, शक्ति का स्रोत और पुरुषों की क्लांति की महौषधि हो उठी है । फिर भी, नारी अपनी सही जगह पर नहीं पहुँची है । पुरुष नारी से अब यह कहने लगा है कि, ''तुम्हें घर से बाहर निकलने की क्या जरूरत है ? कमाने को मैं अकेला काफी हूँ । तुम घर बैठे खर्च किया करो ।'' किंतु इतना ही यथेष्ट नहीं है । नारियों को सोचना चाहिए कि पुरुष ऐसा कहता क्यों है । स्पष्ट ही, इसलिए कि नारी को वह अपनी क्रीड़ा की वस्तु मानता है, आराम के समय अपने मनोविनोद का साधन समझता है । इसलिए, वह नहीं चाहता कि आनंद की इतनी अच्छी मूर्त्ति पर थोड़ी सी धूल या थोड़ा भी धुएँ का धब्बा लगे ।

नारी और नर एक ही द्रव्य की ढली दो प्रतिमाएँ हैं । आरंभ में दोनों बहुत कुछ समान थे । आज भी प्रत्येक नारी में कहीं न कहीं कोई एक प्रच्छन्न नर और प्रत्येक नर में कहीं न कहीं एक क्षीण नारी छिपी हुई है । किंतु सदियों से नारी अपने भीतर के नर को और नर अपने भीतर की नारी को बेतरह दबाता आ रहा है । परिणाम यह है कि आज सारा जमाना ही मरदाना मर्द और औरतानी औरत का जमाना हो

उठा है । पुरुष इतना कर्कश और कठोर हो उठा है कि युद्धों में अपना रक्त बहाते समय उसे यह ध्यान ही नहीं रहता कि रक्त के पीछे जिनका सिंदूर बहनेवाला है, उनका क्या हाल होगा । और न सिंदूरवालियों को ही इसकी फिक्र है कि और नहीं तो, उन जगहों पर तो उनकी राय खुले जहाँ सिंदूर पर आफत आने की आशंका है । कौरवों की सभा में यदि संधि की वार्ता कृष्ण और दुर्योधन के बीच न होकर कुंती और गांधारी के बीच हुई होती, तो बहुत संभव था कि महाभारत नहीं मचता । किंतु कुंतियाँ और गांधारियाँ तब भी निश्चेष्ट थीं और आज भी निश्चेष्ट हैं । बल्कि, द्वापर से कलिकाल तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भीतर की नरता का और भी अधिक दलन कर चुकी हैं । जहाँ कहीं फूलों का प्रदर्शन और रेशमी वस्त्रों की हाट है, नारियाँ अपने मन से वहीं जमा होती हैं । जिन कांडों से फूलों के बाग उजड़ते और रेशमी वस्त्रों के बाजार जलकर खाक हो जाते हैं, उनके संचालन और नियंत्रण का सारा भार उन्होंने पुरुषों पर डाल रखा है । आधी दुनिया उछलने-कूदने, आग लगाने और उसे बुझाने में लगी हुई है और आधी दुनिया फूलों की सैर में है ।

नर-नारी के प्रचलित संबंधों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव संसार के इतिहास पर पड़ रहा है और जब तक यह संबंध नहीं सुधरते, शांति के मार्ग की सारी बाधाएँ दूर नहीं होंगी । नारी कोमलता की आराधना करते-करते इतनी कोमल हो गई है कि अब उसे दुर्बल कहना चाहिए । उसने पौरुष से अपने आप को इतना विहीन बना लिया है कि कर्म के बड़े क्षेत्रों में पाँव धरते ही उसकी पत्तियाँ कुम्हलाने लगती हैं और पुरुष में कोमलता की जो प्यास है उसे नारी भली-भाँति शांत कर देती है । फिर, पुरुष अपने भीतर कोमलता का विकास क्यों करे ?

इस स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता वह नहीं है जिसे रोमांटिक कवियों और चिंतकों ने बतलाया है, बल्कि वह है जिसकी ओर संकेत गाँधी और मार्क्स करते हैं । निवृत्तिमार्गियों की तरह नारी से दूर भागने की बात तो निरी मूर्खता की बात है; और भोगवादियों के समान नारी को निरे भोग की वस्तु मान बैठना और भी गलत है । नारी केवल नर को रिझाने अथवा उसे प्रेरणा देने को नहीं बनी है । जीवन यज्ञ में उसका भी अपना हिस्सा है और वह हिस्सा घर तक ही सीमित नहीं, बाहर भी है । जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है । नर और नारी, दोनों के जीवनोद्देश्य एक हैं । यह अन्याय है कि पुरुष तो अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनमाने विस्तार का क्षेत्र अधिकृत कर ले और नारियों के लिए घर का छोटा कोना छोड़ दे । जीवन की प्रत्येक बड़ी घटना आज केवल पुरुष प्रवृत्ति से नियंत्रित और संचालित होती है । इसीलिए, उसमें कर्कशता अधिक, कोमलता कम दिखाई देती है । यदि इस नियंत्रण और संचालन में नारियों का भी हाथ हो तो मानवीय संबंधों में कोमलता की वृद्धि अवश्य होगी ।

यही नहीं, प्रत्युत, प्रत्येक नर को एक हद तक नारी और प्रत्येक नारी को एक हद तक नर बनाना भी आवश्यक है । गाँधीजी ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में नारीत्व की भी साधना की थी । उनकी पोती ने उन पर जो पुस्तक लिखी है, उसका नाम ही 'बापू, मेरी माँ' है । दया, माया, सहिष्णुता और भीरुता, ये स्त्रियोचित गुण कहे जाते हैं । किंतु, क्या इन्हें अंगीकार करने से पुरुष के पौरुष में कोई दोष आनेवाला है ? दया, माया और सहिष्णुता ही नहीं, भीरुता का भी एक अच्छा पक्ष है जो मनुष्य को अनावश्यक विनाश से बचाता है । उसी प्रकार अध्यवसाय, साहस और शूरता का वरण करने से भी नारीत्व की मर्यादा नहीं

घटती ।

अर्धनारीश्वर केवल इसी बात का प्रतीक नहीं है कि नारी और नर जब तक अलग हैं तब तक दोनों अधूरे हैं, बल्कि इस बात का भी कि पुरुष में नारीत्व की ज्योति जगे, और यह कि प्रत्येक नारी में भी पौरुष का स्पष्ट आभास हो ।

मही माँगती प्राण-प्राण में सजी कुसुम की क्यारी;
स्वप्न-स्वप्न में गूँज सत्य की, पुरुष-पुरुष में नारी ।

❑❑❑

अभ्यास

पाठ के साथ

1. 'यदि संधि की वार्ता कुंती और गांधारी के बीच हुई होती, तो बहुत संभव था कि महाभारत न मचता'। लेखक के इस कथन से क्या आप सहमत हैं ? अपना पक्ष रखें ।
2. अर्धनारीश्वर की कल्पना क्यों की गई होगी ? आज इसकी क्या सार्थकता है ?
3. रवींद्रनाथ, प्रसाद और प्रेमचंद के चिंतन से दिनकर क्यों असंतुष्ट हैं ?
4. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग क्या हैं ?
5. बुद्ध ने आनंद से क्या कहा ?
6. स्त्री को अहेरिन, नागिन और जादूगरनी कहने के पीछे क्या मंशा होती है, क्या ऐसा कहना उचित है ?
7. नारी की पराधीनता कब से आरंभ हुई ?
8. प्रसंग स्पष्ट करें –

   (क) प्रत्येक पत्नी अपने पति को बहुत कुछ उसी दृष्टि से देखती है जिस दृष्टि से लता अपने वृक्ष को देखती है ।

   (ख) जिस पुरुष में नारीत्व नहीं, अपूर्ण है ।
9. जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है । कैसे ?
10. 'अर्धनारीश्वर' निबंध में दिनकर जी के व्यक्त विचारों को सार रूप में प्रस्तुत करें'।

पाठ के आस-पास

1. दिनकर जी ने निबंध में इड़ा का उल्लेख किया है । इड़ा प्रसाद जी के काव्य कामायनी की पात्र है । कामायनी के पात्रों एवं इसकी कथावस्तु की जानकारी शिक्षक से प्राप्त करें ।
2. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग का संबंध बौद्धमत से है जबकि श्वेतांबर और दिगंबर का संबंध जैनमत से । इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इनकी प्रमुख मान्यताएँ क्या हैं ? मालूम करें और लिखें ।

3. बुद्ध को नारियों को बौद्ध धर्म में प्रवेश की अनुमति क्यों देनी पड़ी, इसका बौद्ध धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा ? वर्ग में अपने शिक्षक से चर्चा करें ।

भाषा की बात

1. निम्नलिखित शब्दों से संज्ञा बनाएँ –
   कल्पित, शीतल, अवलंबित, मोहक, आकर्षक, वैयक्तिक, विधवा, साहसी
2. वाक्य प्रयोग द्वारा लिंग-निर्णय करें –
   संन्यास, आयुष्मान, अंतर्मन, महौषधि, यथेष्ट, मनोविनोद
4. अर्थ की दृष्टि से नीचे लिखे वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) संसार में सर्वत्र पुरुष पुरुष हैं और स्त्री स्त्री ।
   (ख) किंतु पुरुष और स्त्री में अर्धनारीश्वर का यह रूप आज कहीं भी देखने में नहीं आता ।
   (ग) कामिनी तो अपने साथ यामिनी की शांति लाती है ।
   (घ) यहाँ से जिंदगी दो टुकड़ों में बँट गई ।
   (ङ) विचित्र बात तो यह है कि इनमें से कई महात्माओं ने ब्याह भी किया और फिर नारियों की निंदा भी की ।
5. 'बट्टा लगाना' का क्या अर्थ है ?

पारिभाषिक शब्द :

प्रवृत्तिमार्ग	:	गृहस्थ जीवन की स्वीकृति का मार्ग
निवृत्तिमार्ग	:	गृहस्थ जीवन को अस्वीकार करने वाला मार्ग
दिगंबर	:	जैन धर्म का वह संप्रदाय जो वस्त्रहीन जीवनचर्या स्वीकार करता है
श्वेतांबर	:	श्वेत वस्त्र पहनने वाला जैन संप्रदाय

शब्द निधि –

अलक्तक	:	आलता	अवलंबित	:	आधारित
बाघंबर	:	बाघ के चर्म का वस्त्र	निस्सीम	:	जिसकी सीमा न हो
दीपित	:	चमकता हुआ	परवशता	:	दूसरे के वश में होना
त्रिपुंड	:	तीन आड़ी रेखाओं वाला तिलक	आयुष्मान	:	आयु वाला
वृंत	:	डाली, फुनगी	ईषत्	:	कुछ, आंशिक, थोड़ा
तंतुवाय	:	बुनकर	अहेर, आखेट	:	शिकार
वामांग	:	बायाँ अंग	स्फुलिंग	:	चिनगारी
ग्रीवा	:	गर्दन	यति	:	तपस्वी
वक्षोदेश	:	छाती का भाग	क्लांति	:	थकान
मंदार-हार	:	मंदार फूल का हार	प्रच्छन्न	:	छिपा हुआ
समीरण	:	हवा	भीरुवा	:	भयशीलता
वारि	:	जल	अध्यवसाय	:	उत्साहपूर्ण परिश्रम
आतप	:	धूप	याचना	:	माँग